International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(6): 75-78

International Journal of
Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(6): 75-78
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-09-2021
Accepted: 12-10-2021

मिथिलेश कुमार ठाकुर
गवेषक– स्नातकोत्तर,
संस्कृत–विभाग, ललित नारायण
मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा,
बिहार

Corresponding Author:
मिथिलेश कुमार ठाकुर
गवेषक– स्नातकोत्तर,
संस्कृत–विभाग, ललित नारायण
मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा,
बिहार

रघुवंशमहाकाव्य में राष्ट्रिय–चेतना का स्वरूप

मिथिलेश कुमार ठाकुर

प्रस्तावना

प्रत्येक देश के कुछ न कुछ अपने राष्ट्रिय आदर्श होते हैं। उन्हीं आदर्शों से उस देश की विश्व में एक विशिष्ट पहचान होती है। उन आदर्शों को अंगीकार करने की प्रबल इच्छा ही राष्ट्रिय–चेतना कहलाती है। इस राष्ट्रिय–चेतना की अभिव्यक्ति प्रीचन संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में हुई है। वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि वैदिक ग्रन्थों के साथ–साथ स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, महाकाव्य, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, कथासाहित्य, नाट्यसाहित्य आदि सभी रचनाओं में किसी न किसी रूप में राष्ट्रिय–चेतना का सन्निवेश उपलब्ध होता है।

रघुवंशमहाकाव्य कालिदास की प्रौढ़तम रचना मानी जाती है। इसके उन्नीस सर्गों में राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के 29 सूर्यवंशी राजाओं का न्यूनाधिक वर्णन हुआ है। राजा दिलीप एवं रानी सुदक्षिणा से गौसेवा द्वारा पुत्रप्राप्ति का वरदान दिलवाकर भारतीय संस्कृति में गौ के महत्त्व को परिलक्षित किया है। राजकार्यों की दक्षता, राजाओं का वैभव तथा आदर्शजीवन का वर्णन करने में कवि की राष्ट्रिय भावना ही प्रमुख है। कान्तासम्मित उपदेश से जीवन के गूढ़ सत्यों को उद्घाटित करते हुए जनसमुदाय को सत्कर्म में प्रवृत्त करते हैं, यह कवि की कला एवं मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना है।

रघुवंश महाकाव्य में राजा दिलीप नन्दिनी गाय की रक्षा हेतु सिंह के सामने स्वयं को समर्पित करते हैं, यह समर्पण उनका अपने राष्ट्र के प्रति है। महाकवि मानते हैं कि व्यष्टिगत बलिदान से समष्टिगत जीवनों की रक्षा होती है तो ऐसा बलिदान श्रेष्ठ है। रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं तथा राष्ट्र हेतु क्रियाकलापों का वर्णन राष्ट्रिय चेतना को ही प्रकाशित करता है। इस राष्ट्रिय भाव–प्रवाह की कुछ महत्त्वपूर्ण धाराएँ महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य में भी प्रवाहित हुई हैं। रघुवंश में राष्ट्रिय आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे सूर्यवंशीय राजाओं को लेखनी का विषय बनाया गया है।

इस महाकाव्य में राष्ट्रिय समृद्धि, राष्ट्रिय एकता एवं राष्ट्रिय गौरव के लिए राजाओं के दिग्विजय का उल्लेख है। महाराज रघु अपनी विशाल सेना के साथ पूर्वदिशा की ओर अंग, बङ्ग, कलिङ्ग आदि को पार करते हुए समुद्र तट तक अपना गौरवमय आधिपत्य स्थापित कर देते हैं। महेन्द्र पर्वत और मलयाचल को पार करते हुए पाण्ड्यदेश में अपना प्रताप फैला देते हैं। दर्दुर पर्वत, सह्याद्रि और मुरला नदी पार करते हुए केरल भूमि के त्रिकूट गिरि में एकता का ध्वज गाढ़ देते हैं। पश्चिमोत्तर में बढ़ते–बढ़ते समस्त यवन राज्यों पर अपनी विजय पताका फहरा देते हैं। उत्तर–पूर्व की ओर चलते–चलते हिमगिरि, कैलाश मानसरोवर, कामरूप एवं प्राग्ज्योतिष के पार तक एक राष्ट्र की अवधारणा साकार कर देते हैं।

रघुकुल के महान् उत्तराधिकारी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम भारतराष्ट्र की सनातन परम्पराओं के महान् आदर्श को सभी समीपवर्ती राष्ट्रों में स्थापित करने के लिए ताड़का, खर–दूषण, मेघनाद, कुम्भकर्ण, रावण आदि हजारों आसुरी शक्तियों का संहार करते हुए सुदूर दक्षिण में श्रीलंका तक विजय ध्वजा फहरा देते हैं। इसके साथ ही इस महाकाव्य में भारत राष्ट्र की महान् धरोहर आध्यात्मिक चिन्तन, भौतिक–नैतिक सन्तुलन, त्यागमय भोग, तपोमय जीवन, धर्मार्थ–काम–मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्टय, ब्रह्मचर्य–गृहस्थ–वानप्रस्थ–संन्यास नामक आश्रम चतुष्ट्य, कर्मफल एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त, गोसेवा की महिमा आदि उन सभी आदर्शों को समाहित करने का प्रयास किया गया है, जो हमारे राष्ट्रिय विरासत के प्राणभूत तत्त्व हैं–

> 'स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
> चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।[1]

महर्षि मनु के वचन को प्रमाण मानकर वैवस्वत मनु के वंश में समुत्पन्न राजाओं के स्वरूप व वैभव को वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने मानस पटल पर राष्ट्रिय–चैतन्य को स्थापित किया। यह राष्ट्रिय–चैतन्य उन–उन राजाओं के व्यवहार से परिज्ञात होता है। क्योंकि, राजा समस्त प्रजाओं का भरण–पोषण के लिए तत्पर रहता है और दुष्टों का परिग्रह करता है। इतना ही नहीं वह दण्ड के माध्यम से सोये हुए को जगाता है। महाकवि कालिदास ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही रघुवंशियों के स्वरूप के द्वारा राष्ट्रिय–चैतन्य को दर्शाया–

> यथाविधिहुताग्नीनां यथा कामार्चितार्थिनाम्।
> यथापरादण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।[2]

इस श्लोक के माध्यम से कविकुलगुरु कालिदास ने पुरुषार्थ–चतुष्टय को कहते हुए राष्ट्रिय–चैतन्य को अक्षुण्ण (स्थिर) रखने वाले तत्त्वों को कहा है। यहाँ यथापराधदण्ड और यथाकालप्रबोधिन शब्द के माध्यम से राष्ट्र के एक अंग जो सप्तांगों में अन्यतम है, उसी की चर्चा की है। आशय यह है कि रघुवंशी ऐसे थे जिनका दण्ड अपराध के अनुकूल रहता था और वह अपराध का अतिक्रमण नहीं करता था। वस्तुतः दण्ड के अभाव में अथवा अपराध का अतिक्रमण कर दण्ड देने की व्यवस्था में राष्ट्रिय मर्यादा छिन्न–भिन्न हो जाती है और लोगों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। जो क्षोभ राष्ट्रिय–चैतन्य को छिन्न–भिन्न करता है। अतः कवि ने राष्ट्रिय–चैतन्य को रघुवंशियों के अन्वय के द्वारा विविध स्थलों पर व्यक्त किया है।

नीतिकारों के अनुसार कोश भी सप्तांगों का एक अंग है और वह कर के माध्यम से भरता है। कवि ने प्रथमसर्ग के अट्ठारहवें श्लोक के द्वारा कर की परम्परा का जो स्वरूप दिखाया है। वही परम्परा कुछ इधर–उधर होकर अद्यावधि प्रचलित है। राष्ट्रिय–चैतन्य का समस्त सारांश कर के ऊपर ही आश्रित है। अगर कर ही नहीं तो क्या राजा? क्या प्रजा?

> ‘प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
> सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।’[3]

इस श्लोक के माध्यम से कवि यह कहना चाहते हैं कि राजा को हमेशा प्रज्ञा की उन्नति के लिए चिन्तित रहना चाहिए और उस उन्नति के लिए प्रजा से कर लेना चाहिए। क्योंकि, राजा राज्य की सुरक्षा, दूसरे देश से युद्ध करने के लिए, प्राकृतिक और मानवीय, दैहिक, दैविक, भौतिक आदि आपदाओं से लड़ने के लिए कर के माध्यम से अपने कोश को सुदृढ़ बनाता है और कोश की व्यवस्था द्वारा राष्ट्रिय–चैतन्य को सुरक्षित रखता है।

वस्तुतः जिस प्रकार सूर्य, समुद्रादि जल संसाधनों से थोड़ा प्रजा से कर लेकर हजार गुणा पुनः वापस करें तो राष्ट्रियता व उसका चैतन्य सुरक्षित एवं संरक्षित रहेगा। यदि राजा कर लेकर उसका उपयोग अपने ही मौज–मस्ती (भोग–विलास) में संलग्न हो जाता है तो निश्चय ही वह राष्ट्र पराधीन हो जायेगा और वहाँ रहने वाले लोग पराधीन हो जायेंगे। अतः रघुवंशी के समान ही कर का ग्रहण कर प्रजाओं की उन्नति अथवा सुविधा के लिए किया जाय तो न ही राष्ट्रिय क्षोभ होगा और न ही राष्ट्रिय–चैतन्य आहत होगा।

रघुवंश के प्रथम सर्गारम्भ में महाकवि कालिदास ने आदि में ही पाँच श्लोकों के द्वारा रघुवंशी राजाओं के गुण का वर्णन किया।[4] इन श्लोकों के द्वारा रघुवंशी राजाओं के स्वरूप को दर्शाते हुए राजा के स्वरूप राजा के स्वभाव, राजा के कर्त्तव्य का भी वर्णन किया है। जिसके आधर पर एक आदर्श राजा की छवि प्रस्तुत होती है। इन पाँचों श्लोकों का भाव जिनमें ‘रघूणामन्वयं वक्ष्ये’ निहित भाव कौटिल्य के द्वारा प्रतिपादित सप्तप्राकृतिक सिद्धान्त के साथ तुलनीय है। जहाँ राजा का स्वरूप इस प्रकार है– राजा कुलीन हो, दैव बुद्धि से युक्त हो, धैर्य सम्पन्न हो, दूरदर्शी हो, धार्मिक हो, सत्यवादी हो, सत्यप्रतिज्ञ हो, कृतज्ञ हो, इन सभी भावों को महाकवि कालिदास ने एक श्लोक में ही कह डाला–

> सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
> आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।[5]

आगे चलकर कौटिल्य ने राजा के छः गुणों का वर्णन किया है। जिसमें सन्धि– विग्रह–यान–आसन–संशय और द्वय भी भाव निहित है। इन समस्त भावों को सन्निहित करते हुए कालिदास कहते है कि रघुवंशी यश के लिए विजय की अभिलाषा रखते थे और प्रजापालन के लिए अर्थ का संचयन करते थे–

> त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
> यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।[6]

इस प्रकार कालिदास ने ग्रन्थारम्भ में ही रघुवंशवर्णन के क्रम में राष्ट्रिय–चैतन्य की जो आधारशीला रखा है वह अवर्णनीय है। वस्तुतः राष्ट्रिय–चैतन्य राजा और प्रजा के मध्य होता है। जहाँ राजा आमात्य, दुर्ग, जनपद, कोश, दण्ड, मित्रादि के द्वारा राष्ट्र में शान्ति व्यवस्था बनाता है तो सजा भी राष्ट्रिय–चैतन्य से युक्त हो। राजा द्वारा निर्मित विधि का परिपालन करता है। राजा न किसी का मित्र होता है और न ही किसी का शत्रु होता है। राजा के राज्य में अच्छे भी व्यक्ति होते हैं और दुष्ट भी रहते हैं। जिस प्रकार समुद्र जल–जन्तु के लिए भयंकर है और रत्न के लिए मनोहर है। उसी प्रकार राजा को दुष्टों के प्रति भयंकर और साधुओं के प्रति मनोहर होने की शिक्षा कवि इस प्रकार कहते हैं–

> ‘भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
> अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।।’[7]

यह शिक्षा ही राष्ट्रिय–चैतन्य का मूलाधार स्तम्भ है। यदि राजा अपने नियमों में थोड़ी–सी भी छुट देता है तो प्रजा में क्षोभ हो जायेगा। यदि राजा सज्जनों को सतायेगा तो वह सज्जन दूसरे राष्ट्र के प्रति व्रजन करेंगे जो राष्ट्रिय–चैतन्य का घातक होगा। इतना ही नहीं राजा के द्वारा समस्त नियमों का पालन किया जाय तो प्रज्ञा आचार्य पद्धति, विधि–पद्धति की त्याग नहीं करेगी। यह समस्त लक्षण रघुवंशी प्रजाओं में था। जो इस प्रकार है–

> ‘रेखामात्रमपि क्षुण्णादा मनोर्वर्त्मनः परम्।
> न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।’[8]

रघुवंशी राजाओं के चरितवर्णन के प्रसंगों में कालिदास का यह भारत प्रेम स्पष्ट परिलक्षित हुआ है। उनकी दृष्टि में यह तथ्य भारतीयों के लिए अतीव गौरवाधायक है कि रघुवंशी नरेशों ने समुद्रपर्यन्त भारतराष्ट्र का संवर्धन सावधानीपूर्वक किया है, प्रजा की भलाई के लिए वे सतत् जागरुक रहे हैं, मानो वे ही प्रजा के पिता हों–

> ‘प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
> स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।’[9]

पिता अपने पुत्रों को कुमार्गगामी होने से रोकता है, सन्मार्ग की शिक्षा देता है, सब प्रकार से उनका रक्षण–पालन करता है। राजा दिलीप प्रजा को सत्कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते थे, उनके लिए अन्न–धन–वस्त्र–शिक्षा का प्रबन्ध करके उनका पालन–पोषण करते थे, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते थे। वे ही प्रजा के वास्तविक पिता थे, जन्मदाता पिता तो केवल जन्म का कारण थे।

रघुवंशी राजाओं–दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, भरत आदि नरेशों के उदात्तचरित भारतीय संस्कृति के आचार–विचार से अनुप्राणित

हैं। उनके आचरण जन्म से मृत्यु तक पवित्र हैं, जो समुद्रपर्यन्त पृथिवी के स्वामी हैं, जिनकी गति उनके उत्कृष्ट कार्यों से स्वर्ग तक है, जो यज्ञीय संस्कृति में विश्वास रखते हैं, जो याचक को दान से सन्तुष्ट करते हैं, जो सत्य की रक्षा में तत्पर रहते हैं, जो यशप्राप्ति के लिए दूसरे देशों को विजय करते हैं, जो बाल्यकाल में विद्याध्ययन करते हैं, जो सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह करते हैं, जो गृहस्थाश्रम में भोगों का सुख प्राप्त करते हैं, जो वृद्धावस्था में सांसारिक सुख का त्याग कर देते हैं, जो इच्छानुसार योग से मृत्यु का वरण करते हैं। रघुवंशी राजाओं के इन श्रेष्ठ गुणों से अभिभूत कालिदास मानों सम्पूर्ण भारत को इन आदर्शों को चरित्र में अवतारणा करने के लिए ही मुखर हुए हैं।

कालिदास राष्ट्रकवि हैं, उनकी राष्ट्रभक्ति ही नहीं राष्ट्रचिन्ता भी तत्सम्बद्ध साहित्यव्यापी है। उनकी भावना का केन्द्रबिन्दु है– राष्ट्र। क्योंकि राष्ट्र ही नहीं तो व्यक्ति और समाज, राज्यसत्ता और राज्यव्यवस्था भी स्थिर नहीं रह सकती है। राष्ट्र का मंगल, अभ्युदय और विस्तार अभीष्ट है। रघु की दिग्विजय यात्रा वर्णन के पारायण से यह धारणा सुनिश्चित होती है कि उनकी दृष्टि में उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पश्चिम में कम्बोज से लेकर पूर्व में कलिंग तक एक सुमहान् भारतराष्ट्र की मूर्तिमती परिकल्पना है। कालिदास राजा रघु की दिग्विजय यात्रा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

> 'स मया प्रथमं प्राचीं तुल्यः प्राचीनबर्हिषा।'[10]

इन्द्र के समान प्रतापी राजा रघु दिग्विजय के लिए पहले पूर्व की ओर चले। पूर्वी राजाओं को जीतते हुए वे समुद्र के किनारे जा पहँचे जहाँ सुह्मदेश (सुह्म– वर्तमान राढ़देश जो बंगाल के पश्चिम में दामोदर के उत्तरी भाग में अवस्थित है।) के राजाओं ने चुपचाप अभिमानियों को उखाड़ फेंकने वाले रघु की अधीनता मानकर अपने प्राणों की रक्षा की।

पुनः सेनानायक रघु ने बंगाली राजाओं को हराया, उन्हें जीतकर रघु ने गंगासागर के द्वीपों में अपनी विजयपताका गाड़ दी। वहाँ से चलकर हाथियों का पुल बनाकर कपिशा नदी से अपनी पूरी सेना पार की। उड़ीसा के राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार कर उन्हें कलिंगदेश का मार्ग बता दिय। महेन्द्र–पर्वत (हनुमान् जिसे लाँघकर लंका गए थे, यह दक्षिण में तिन्तेवली के समीप स्थित है।) पर पहुँचकर रघु ने उसके शिखर पर अपना पड़ाव डाला।

पूर्वदिशा को जीतकर विजयी रघु दक्षिणदिशा की ओर बढ़कर कावेरी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ से चलते–चलते बहुत दूर निकलकर रघु के सैनिक मलयाचल की तराई में पहुँचे। दक्षिणदिशा में जाने पर तो सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, परन्तु रघु का तेज इतना प्रबल था कि वहाँ के पाण्ड्य राजा भी उनके आगे न ठहर सके–

> 'दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
> तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।।'[11]

पुनः रघु सह्य (सह्य की पहाड़ियाँ ताप्ती नदी से कन्याकुमारी तक फैली हुई पश्चिमी घाट की शृंखलाएँ हैं।) की पहाड़ी को पार कर आगे बढ़े। रघु के हाथियों ने अपने दाँतों के प्रहारों से त्रिकूट (तीन शिखरों वाला पर्वत जो एक पर्वत लंका में, दूसरा क्षीरसागर में तथा तीसरा गुजरात में गिरनार पर्वत है, जिसे पारकर रघु सिन्धुप्रदेश की ओर गए।) पर्वत पर रेखाएँ बनाकर मानों उस विजयस्तम्भ पर रघु की विजयकथा लिखी–

> 'त्रिकूटमेव तत्रोच्चौर्जयस्तम्भं चकार सः।'[12]

रघु ने पारसीक राजाओं को जीतने के लिए स्थलमार्ग पकड़ा, फिर उत्तर के राजाओं को विजित करने के लिए उस दिशा में घूम पड़े। सिन्धु नदी (सिन्धुनदी हिमालय से निकलकर कश्मीर, पंजाब और सिन्धुप्रदेश में बहती हुई अरब–सागर में जा मिलती है।) के तटों पर बिखरी केसर के पराग की धूल में लोट–पोटकर रघु के घोड़ों ने अपनी थकान मिटाई। वहाँ रघु अपने प्रचण्ड पराक्रम से हूण राजाओं को समाप्त कर दिया। कम्बोज (वर्तमान में अफगानिस्तान का वह भाग है जो कन्दहार के पास अवस्थित है, यहाँ काबुल के उत्तर का भाग कम्बोज कहा गया है।) के राजा भी लड़ाई में रघु के आगे नहीं टिक पाए, रघु के आगे जा झुके। वहाँ से अपनी अश्वसेना लेकर हिमालय पर्वत पर जा चढ़े, अपनी सेना के अश्वों के खुरों से उठी हुई धातुओं की लाल धूलि से हिमालय की चोटियों को और ऊँचा कर दिया–

> 'ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
> वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धतैर्धातुरेणुभिः।।'[13]

रघु ने हिमालय की उपत्यकाओं में बसने वाले किरातों और पर्वतीयों के छक्के छुड़ा दिए। अब वे कैलास पर्वत की ओर न जाकर लौहित्य नदी (लौहित्य नदी को ब्रह्म के अंश से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्मपुत्र कहा गया, लोहित–सरोवर से निकलने के कारण इसका नाम लौहित्य पड़ा।) पार कर प्राग्ज्योतिष या असम जा पहुँचे। प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने रघु के चरणों की छाया को रत्नों से पूजा–

> 'रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः।'[14]

इस प्रकार राजा रघु समस्त पृथिवी का विजेता बन कर विजेता अपनी राजधानी अयोध्या लौटे। यहाँ आकर उन्होंने दिग्विजय की कृतज्ञता हेतु विश्वजित् नामक यज्ञ किया, जिसमें अपनी सारी सम्पत्ति दक्षिणा में दे दी–

> 'स विश्वजितमाजह्वे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणाम्।
> आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।।'[15]

इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर भी सुनन्दा द्वारा राजाओं का परिचय प्रस्तुत करने के व्याज से उन्होंने मगध, अंग, अवन्ती, माहिष्मती, मथुरा, कलिंग, पाण्ड्य तथा कोशल नाम से प्रख्यात भारतीय भू–भागों (मगध बनारस से पूर्व का प्रदेश, वर्तमान बिहार, तीर्थयात्रा की भावना से ही यहाँ आना उचित है। अंग–प्रदेश वर्तमान भागलपुर के आस–पास का भू–भाग कहलाता था। अवन्ती अर्थात् वर्तमान मध्यभारत का मालवा–प्रदेश और उसकी राजधानी उज्जयिनी (विशाला, उज्जयिनी और अवन्ती– इन तीनों नामों से प्रसिद्ध है।) शिप्रा नदी के तट पर बसी है। माहिष्मती– हैहय राजाओं की कुलक्रमागत राजधानी। मथुरा– यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ एक प्राचीन नगर, राजा शूरसेन की राजधानी, कृष्ण की जन्मभूमि प्रसिद्ध है कि शत्रुज ने इसे बसाया था। कलिंग भगवान् जगन्नाथ की भूमि तथा वाममार्गियों की निवास–भूमि। पाण्ड्य– उच्चकुलीन राजाओं के लिए प्रसिद्ध पाण्डुदेश। कोशल– अयोध्या (सरयू नदी के तट पर बसी हुई) रघुवंशी राजाओं की राजधानी, राम की जन्मभूमि।) का अभिनिवेशपूर्ण वर्णन किया है। प्रत्येक राज्य के अधिपति के वंशीय विशेषताओं (नृपाणां श्रुतवृत्तवंशा) का तथा भौगोलिक परिस्थितियों का लेखनीबद्ध विवरण कालिदास के राष्ट्रज्ञान और राष्ट्रप्रेम की कथा कहता है।

लंका में रावणवध के पश्चात् सीता के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हुए श्रीराम ने सीता को दक्षिण से उत्तर तक विस्तृत भारत का दर्शन कराया। यह भारत दर्शन अपरोक्षरूप से साहित्यरसिकों के लिए है, भारतसन्तानों के लिए है। कालिदास ने भारतीय दक्षिणी समुद्र, माल्यवान् पर्वत, पम्पा सरोवर, पंचवटी, गोदावरी नदी, पंचाप्सर सरोवर, शरभंग तपोवन, मन्दाकिनी नदी, चित्रकूट, प्रयाग (संगम), अयोध्या (सरयू) के विस्तृत विवरण देकर

राष्ट्रिय आत्मीयता का परिचय दिया है। (माल्यवान् रावण का नाना और मन्त्री था। ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर उसने समुद्र के मध्य लंका में वर्षों रावण के साथ रहा। पम्पासर– दण्डकारण्य का प्रसिद्ध सरोवर। पंचवटी– पीपल, बेल, वट, आँवला, अशोक वृक्षों से युक्त भूमि, दण्डकवन में नासिक से कुछ मील की दूरी पर गोदावरी नदी के तट का एक वन, जहाँ राम सीता के साथ रहे, शूर्पणखा के नाक–कान काटे गए, सीताहरण हुआ। गोदावरी–गौतमी नाम से भी प्रसिद्ध, नासिक जिले के त्र्यम्बक गाँव के पास पहाड़ से यह नदी निकली है। दक्षिणी पठार को पार करती हुई बंगाल की खाड़ी में समुद्र से जा मिलती है। पंचासर–मण्डकर्णी ऋषि द्वारा निर्मित सरोवर। मन्दाकिनी–आकाशगंगा, चित्रकूट की पहाड़ियों में कहीं प्रकट, कहीं धरती के अन्दर बहने वाली एक पवित्र नदी। चित्रकूट–विन्ध्यपर्वत की एक शृंखला का नाम, अयोध्या से निर्वासित राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ कुछ काल यहाँ व्यतीत किया था। प्रयाग–ब्रह्मा की यज्ञस्थली, गंगा–यमुना का मिलन स्थल। सरयू नदी के तट पर बसी रघुवंशी राजाओं की राजधानी अयोध्या–नगरी, प्राचीन काल में अपने वैभव के लिए विख्यात थी।) इस तरह महाकवि कालिदास ने रघुवंश में अनेकों जगह राष्ट्रिय–चैतन्यता का वर्णन विभिन्न रूपों से विभिन्न सर्गों में निरूपित किये हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. मनुस्मृति (कुलुकभट्ट)– 7/17
2. रघुवंश– 1/6
3. रघुवंश– 1/18
4. रघुवंश– 1/5–9
5. रघुवंश– 1/5
6. रघुवंश– 1/7
7. रघुवंश– 1/16
8. रघुवंश– 1/17
9. रघुवंश– 1/24
10. रघुवंश– 4/28
11. रघुवंश– 4/49
12. रघुवंश– 4/59
13. रघुवंश– 4/71
14. रघुवंश– 4/84
15. रघुवंश– 1/86